द्रव्य : एक अनुचिन्तन

□ **वैद्य श्री राजेन्द्रकुमार जैन, आयुर्वेदाचार्य**
द्वारा डॉ० दरबारीलाल कोठिया
[चमेली कुटीर, डुमराव कालोनी, **अस्सी, वाराणसी** (उ० प्र०)]

आज तक जितने भी चिन्तन या विचार सामने आये हैं, उनकी विषयवस्तु यह जगत् या जगत् से जुड़ी हुई कोई वस्तु रही है। प्राचीन काल से ही विचारकों ने जगत् का अध्ययन कर सर्वसामान्य के सामने संसार एवं मोक्ष का स्वरूप उपस्थित किया।

यह जगत द्रव्यों का समूह है, यह निर्विवाद सत्य है। इसका अध्ययन चिन्तकों ने अपने-अपने ढंग से किया है। 'द्रु' धातु से 'द्रव्य' शब्द बना है। 'गुणान् द्रवन्ति' या 'गुणैः द्रूयन्ते' इन दो व्युत्पत्तियों से द्रव्य का निरूपण किया जाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि जो गुणों सहित है, वह द्रव्य है। आधुनिक समय में द्रव्य को 'सब्सटेन्स' (Substance) शब्द से जाना जा सकता है।

द्रव्य के जो लक्षण विभिन्न विचारकों ने दिये हैं, वे लगभग मिलते-जुलते हैं। यथा :—

१. "यंत्राश्रिताः कर्मगुणाः कारणं समवायियत्। तद् द्रव्यं····।"—चरक

२. "क्रिया गुणवत् समवायिकारणमिति द्रव्यम्····"—वै० सू०

३. "द्रव्य लक्षणं तु क्रियागुणवत् समवायिकारणम्····"—सुश्रुत

४. "गुणवर्यवद् द्रव्यम्·······"—उमास्वामी, त० सू० ५।३८

उपर्युक्त लक्षणों का सामान्य अर्थ यह है कि, जिसमें गुण और पर्याय रहें, वह द्रव्य है। लेकिन आचार्य उमास्वामी ने एक दूसरा लक्षण भी किया है। उन्होंने कहा है कि "सद् द्रव्य लक्षणम्" (त० सू० ५।२९) अर्थात् द्रव्य का लक्षण सत् (होना) है तथा सत् को भी स्पष्ट करते हुए कहा है कि उत्पाद्व्ययध्रौव्ययुक्त सत् (त० सू० ५।३०) अर्थात् सत् वह है जिसमें उत्पाद (नयी पर्याय की उत्पत्ति), व्यय (पुरानी पर्याय का नाश), तथा ध्रुवता (स्वभाव की स्थिरता) है, और अन्ततः ऐसा द्रव्य ही है।

वैशेषिकों द्वारा प्रतिपादित द्रव्य का एक अन्य लक्षण है, "द्रव्यत्व जातिमत्वं द्रव्यत्वम्"। यह लक्षण निर्दोष न होने से आचार्य पूज्यपाद द्वारा समालोचित हुआ है। उन्होंने कहा है कि "द्रव्ययोगात् द्रव्यमिति चेत्, न, उभयासिद्धेः। यथा दण्डदण्डिनोर्योगो भवति पृथक, सिद्धयोः न च द्रव्यद्रव्यत्वे पृथक सिद्धेस्तः।" इसका अर्थ यह है कि जैसे दण्ड और दण्डी पुरुष पृथक सिद्ध हैं और उनका सम्बन्ध भी सिद्ध है उसी तरह द्रव्य-द्रव्यत्व पृथक सिद्ध नहीं है। यदि द्रव्यत्व के योग से द्रव्य कहलाता है तो वह द्रव्यत्व स्वतन्त्र रूप से उपलब्ध होना चाहिये। लेकिन द्रव्य से द्रव्यत्व तथा द्रव्यत्व से द्रव्य पृथक सिद्ध नहीं है, अतः उनका सम्बन्ध भी सम्भव नहीं है। ऐसी स्थिति में द्रव्यत्व के योग से द्रव्य का लक्षण मानना युक्त नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आधुनिक विज्ञान कहता है जिसमें भार तथा आयतन हो एवं जो हमारी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा जाना जा सके, उसे द्रव्य कहते हैं। यद्यपि यह विज्ञान अभी कुछ तत्त्वों को द्रव्य मानने के लिए तैयार नहीं है।

द्रव्यों का वर्गीकरण

आधुनिक विज्ञान द्रव्यों को दो भागों में बाँटता है—सजीव द्रव्य तथा निर्जीव द्रव्य। वैशेषिक नौ द्रव्य मानते हैं—"तत्र पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशकालदिगात्ममनांसि नवैवेति।"—प्रशस्तपाद। जैनाचार्यों ने द्रव्य को दो भागों में वर्गीकृत किया है "जीवदव्वाय अजीव दव्वाय"—अनुयोग सूत्र। पुनः अजीव द्रव्यों को उन्होंने पाँच प्रकार का बताया है—पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश और काल। "अजीवकायाः धर्माधर्माकाशपुद्गलाः" तथा "कालश्च"—तत्त्वार्थ सूत्र (५-१, ३०) इस प्रकार जैन चिन्तकों ने ये पाँच अजीव द्रव्य तथा जीव द्रव्य सहित छह द्रव्य बतलाये हैं।

यहाँ यह प्रश्न उपस्थित होता है कि जैन आचार्यों ने छह द्रव्य ही क्यों माने? वैशेषिकों की तरह नौ द्रव्य क्यों नहीं माने? इसका उत्तर यह है कि धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन द्रव्यों को छोड़कर जीव और पुद्गल ये दो द्रव्य विज्ञान भी स्पष्ट स्वीकार करता है जैसा कि उसके सजीव एवं निर्जीव दो द्रव्यों के उपर्युक्त कथन से प्रकट है। वैशेषिकों के जल, वायु आदि कोई पृथक द्रव्य स्वीकार नहीं किये, क्योंकि आज यह सिद्ध कर दिया गया है कि ये कोई स्वतन्त्र द्रव्य नहीं। जल में H_2 तथा O का संयोग है, वायु, आक्सीजन, नाइट्रोजन आदि का संयोग है तथा शक्कर (पार्थिव) आदि में भी C, H तथा O का भिन्न मात्रा का संयोग ही कारण है। दिशा तो प्रतीची उदीची आदि निर्जीव द्रव्यों से ही व्यवहारतः सिद्ध होती है। वस्तुतः दिशा स्वतन्त्र कोई द्रव्य नहीं? मन भी पौद्गलिक द्रव्य है। विशेष प्रकार के पुद्गल ही आत्मा के साथ रहकर मन संज्ञा पाते हैं। द्रव्य मन (मस्तिष्क) जिन प्राणियों में पाया जाता है वह तो सरासर भौतिक है ही। अन्य द्रव्यों के सम्बन्ध में आगे विचार किया गया है।

इस तरह विज्ञान जैन दर्शन के कितने ही नजदीक आ चुका है!

द्रव्यों की उपलब्धि

जीव द्रव्य स्वानुभव-प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम इन तीन प्रमाणों से जाना जाता है। पुद्गल भी प्रत्यक्षादि प्रमाणों से जाना जाता है। धर्म तथा अधर्म द्रव्य जीव और पुद्गलों की गति एवं स्थिति में हेतु होने से और काल द्रव्य द्रव्यों की वर्तना परिणति आदि में हेतु होने से अनुमान और आगम प्रमाण से जाना जाता है। आकाश का ज्ञान भी अनुमान तथा आगम प्रमाण से होता है। केवली (सर्वज्ञ) सब द्रव्यों को प्रत्यक्ष प्रमाण से जानते हैं।

जीव द्रव्य का स्वरूप

जीव के लक्षण आचार्यों ने मिलते-जुलते किये हैं :—

"तत्र चेतना ('चिती—संज्ञाने धातु से निष्पन्न) लक्षणो जीवः"—चरक।

"ज्ञानाधिकरणमात्मा"—अन्नं भट्ट।

"उपयोगो लक्षणम्...." उमास्वामी।

यहाँ हम देखते हैं कि सभी ने जीव का लक्षण 'चेतना' किया है। आचार्य अमृतचन्द्र ने जीव को पुरुष भी कहा है :—

अस्तिपुरुषश्चिदात्मा, विवर्जितः स्पर्शगन्धरसवर्णैः।
गुणपर्ययसमवेतः समाहितः समुदयव्ययध्रौव्यैः॥

आज का विज्ञान सजीव द्रव्यों का पार्थक्य जनन, प्रजनन, श्वसन, भोजन, वृद्धि तथा मरण से करता है। जैन आचार्यों ने ये लक्षण संसारी (सशरीरी जीव) के माने हैं :—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पञ्च वि इन्दियपाणा, मणवयणकायतिण्णिबलपाणा।
आणप्पणाणणा········॥ —गोम्मटसार जीवकाण्ड।

जीव द्रव्य स्वसंवेदन-प्रत्यक्ष से ही जाना जा सकता है। यदि कोई कहे कि जीव तो अनुमान प्रमाण से ही जाना जाता है। उसकी जन्म, मृत्यु, श्वसन आदि क्रियाओं को देखकर उसका अनुमान होता है, यह सत्य है किन्तु स्वयं का अनुभव भी होता है कि मैं शरीर से पृथक हूँ और सुखी हूँ, दुःखी हूँ तथा जानने वाला हूँ। यही कारण है कि जैन दर्शन में सम्यक् श्रद्धान की महिमा गाते हुए कहा गया है कि आत्मा की व्याख्या वचनों से कहाँ तक की जाये, यदि हम एक बार स्व को समाप्त कर देखें तो सब समाधान हो सकता है। जितनी गहराई में उतरेंगे उतने ही आत्मा के तल में पहुँच जायेंगे।

जीव संख्या में अपरिसंख्येय हैं तथा 'स्व' में पूर्ण, 'पर' से नितान्त भिन्न हैं। सभी जीव समान गुण-धर्मों से युक्त एवं अनेकान्तात्मकता से युक्त हैं।

एक जीव और सभी जीव सम्पूर्ण लोकाकाश में विद्यमान हैं। प्रत्येक जीव का प्रमाण कम से कम लोकाकाश के असंख्यातवें भाग तथा अधिक से अधिक पूर्ण लोकाकाश के बराबर है। उमास्वामी ने इस विषय को स्पष्ट करने के लिए "प्रदेशसंहारविसर्पाभ्यां प्रदीपवत्" यह उदाहरण दिया है। अर्थात् जिस तरह प्रकाश कम या अधिक स्थान में संकोच या विस्तार कर सकता है उसी तरह जीव भी शरीर के अनुसार संकोच विस्तार कर सकता है।

पुद्गल

पुद्गल द्रव्य की इकाई परमाणु है। स्वतन्त्र परमाणु को नंगी आँखों से नहीं देखा जा सकता, लेकिन पुद्गल समूह को देखा जा सकता है। प्रत्येक परमाणु में अनन्त गुण-धर्म होते हैं। इनमें दो विशिष्ट गुण होते हैं, जिन्हें शक्त्यंश कहते है। ये गुण हैंरू—क्षता एवं स्निग्धता। ये दोनों गुण सापेक्ष होते हैं।

अणु एवं स्कन्ध की उत्पत्ति

उमास्वामी ने कहा है—'भेदसंघाताभ्यां उत्पद्यन्ते भेदादणुः' "भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषः" "स्निग्ध रूक्षत्वाद्-बन्धः", "न जघन्यगुणानाम्" "गुणसाम्ये सदृशानाम् द्व्यधिकादिगुणानां तु।" अर्थात् स्कन्धों के भेदन (तोड़ने) से अणु तथा अणुओं को संहित करने (जोड़ने) से स्कन्ध की उत्पत्ति होती है। यह क्रिया स्निग्ध और रूक्ष शक्त्यंशों के निमित्त से ही होती है लेकिन जघन्य शक्त्यंशों से नहीं। जैसे तेल में पानी नहीं मिलता वैसे सामान शक्त्यंशों से भी बन्ध नहीं होता। जैसे माना कि दो आटा के अणु हैं वे तब तक नहीं मिलेंगे जब तक कि उनमें दो कम शक्त्यंश वाली वस्तु न मिले। यदि उनके बीच में मात्रानुसार पानी मिल जाये तो बन्ध हो जायेगा। यही कारण है कि आटा गूँधते समय आटे से आधे या उससे भी कम भाग पानी की जरूरत होती है। यही अर्थ 'द्व्यधिकादि' सूत्र से स्पष्ट होता है। यदि समान भाग पानी मिला दिया जाये तो आटा पिण्डीभूत नहीं होगा। दोनों आटा परमाणु समान गुण होने से बिना किसी प्राध्यम के नहीं बँध सकते यह अर्थ है "गुणसाम्ये सदृशानाम्" का।

आज की भाषा में इन शक्त्यंशों को हम इलेक्ट्रान कह सकते हैं। क्योंकि आज वैज्ञानिक भी यही तथ्य बतलाते हैं कि जिस परमाणु की कक्षा में कम इलेक्ट्रान होगा किंवा समान होंगे तो एक परमाणु के इलेक्ट्रान दूसरे परमाणु के इलेक्ट्रान की कक्षा में चले जाते हैं और आपस में बँध जाते हैं।

आणविक बल तथा आणविक दूरी को समझने के लिये वे कहते हैं कि जब आणविक दूरी कम होती है तो आणविक बल अधिक रहता है। जैसे एक लोहे का ठोस (पिण्ड) अत्यधिक बल लगाने पर ही टूटता है क्योंकि इसमें आणविक बल अधिक रहता है तथा आणविक दूरी कम। इसके विपरीत एक लकड़ी को तोड़ने के लिए लोहे की अपेक्षा कम बल लगता है अतः उसमें लोहे की अपेक्षा आणविक दूरी अधिक होती है।

यह बन्ध भी दो प्रकार का होता है। एक मिश्रण तथा दूसरा यौगिक। जब दो विभिन्न जाति के अणु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिलकर एक नयी वस्तु का निर्माण करते हैं तो उसे यौगिक कहते हैं। जैसे—$H_2+O=$पानी। तथा जो नयी वस्तु का निर्माण नहीं करते वे मिश्रण कहलाते हैं। जैसे—बारूद।

पुद्गल द्रव्य संख्या में अनन्तानन्त हैं। ये पूरे लोकाकाश में उपस्थित हैं। इनका आकार अवक्तव्य है।

धर्म तथा अधर्म द्रव्य

ये दोनों द्रव्य संख्या में एक-एक हैं—आकाशादेकद्रव्याणि तथा प्रत्येक द्रव्य सम्पूर्ण लोकाकाश में व्याप्त है।

धर्म द्रव्य उन द्रव्यों की गति में निमित्त होता है जो अपनी योग्यता से चले। चलने वाले द्रव्य केवल दो हैं—जीव एवं पुद्गल। "गति स्थित्युपग्रहो धर्माधर्मयोरुपकारः।" यद्यपि आचार्य उमास्वामी ने इस सूत्र में यह नहीं बतलाया कि यह दोनों किन का उपकार करते हैं, परन्तु इसी अध्याय के प्रारम्भ में यह कहा है कि जीव और पुद्गल को छोड़कर सब द्रव्य निष्क्रिय हैं—"निष्क्रियाणि च।" इससे स्पष्ट है कि आचार्य का अभिप्राय जीव और पुद्गल के चलने तथा ठहरने में इन द्रव्यों के योगदान बतलाने का है।

धर्म द्रव्य स्वयं न चलता हुआ जो स्वतः चलते हैं उनके चलने में अप्रेरक निमित्त है। लेकिन किसी को चलने हेतु प्रेरित नहीं करता। तथा अधर्म द्रव्य स्वयं स्थिर रहता हुआ जो स्वतः स्थिर होवे उनकी स्थिति में निमित्त होता है, किसी को ठहरने के लिए प्रेरित नहीं करता। जैसे—यदि कोई जीव या पुद्गल चल रहा है तो अधर्म द्रव्य उसे रोक नहीं सकता तथा यदि कोई जीव या पुद्गल स्थिर है तो धर्म द्रव्य उसे चला नहीं सकता।

आधुनिक विज्ञान भी धर्म तथा अधर्म द्रव्य के सदृश ईथर तथा नॉन-ईथर दो शक्तियाँ मानता है। लेकिन अपनी परिभाषा के अनुसार द्रव्य नहीं मानता।

आकाश

यह भी पूर्व रूप में एक द्रव्य है "आ आकाशादेकद्रव्याणि।" इसमें जहाँ तक धर्म तथा अधर्म द्रव्य है वहाँ तक लोकाकाश है और उसके बाहर चारों ओर अनन्त अलोकाकाश है। आकाश अपने स्वरूप में ही प्रतिष्ठित है तथा दूसरे द्रव्यों को स्थान देता है—"आकाशस्यावगाहः।"

काल द्रव्य :[1]

काल को सभी दार्शनिक द्रव्य मानते हैं। जैन दर्शन भी इसे द्रव्य स्वीकार करता है।

काल दो प्रकार का है १—निश्चयकाल एवं २—व्यवहारकाल। निश्चयकाल "वर्तनापरिणामक्रियापरत्वा-परत्वे च कालस्य" अर्थात् सभी द्रव्यों के वर्तन (अस्तित्व), परिगमन क्रिया तथा ज्येष्ठ, कनिष्ठ आदि के व्यवहार में कारण होता है। और व्यवहार काल उसे कहते हैं जो घड़ी, घण्टा, दिन, महीना आदि का विभाजन करता है।

निश्चय काल जहाँ असंख्यात कालाणु रूप है वहीं व्यवहार काल भूत, भविष्यत्, वर्तमान तथा दिन-रात, पक्ष, महीना, वर्ष आदि के भेद से अनेक प्रकार का है।

काल की संख्या असंख्यात है। एक-एक आकाश प्रदेश पर एक-एक कालाणु की स्थिति है।

□

---

१. (क) "अपरोऽस्मिन्नपरं युगपच्चिरं क्षिप्रमिति काल लिङ्गानि"—वै० ६।
(ख) जन्यानां जनक कालो जगतामाश्रयो मतः।
परापरत्वधी हेतुः क्षणादिस्यादुपाधितः॥—मुक्तावली
(ग) "कालश्चेत्येके" तत्त्वार्थसूत्र (श्वेताम्बर पाठ)
(घ) "कालश्च" तत्त्वार्थसूत्र (दिगम्बर पाठ)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org